पलायन : झोंपड़पट्टियों का उत्पत्ति कारक (स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी–उपन्यासों के संदर्भ में)

18

बबीता भण्डारी*

लोगों का बेहतर जीवन की तलाश में एक स्थान को छोड़ कर दूसरे स्थान पर जाना पलायन कहलाता है। वस्तुतः 'पलायन' बेहतर जीवन और अवसरों की तलाश का परिणाम है। यह प्रक्रिया संबंधित दोनों क्षेत्रों की जनसंख्या व भूमि के अनुपात तथा विकास दर को प्रभावित करती है। वर्तमानकालिक भारतीय परिप्रेक्ष्य में 'पलायन' प्रक्रिया एक समस्या का रूप धारण कर चुकी है। प्रायः ग्रामीण क्षेत्रों की अधिकांश जनसंख्या शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन करती है। परिणामस्वरूप शहरों में आवासीय सुविधाओं की कमी, जनसंख्या वृद्धि, बेरोजगारी, मानव संसाधनों की कमी, गरीबी जैसी समस्याएँ पंख पसार रही हैं। नगरों–महानगरों में भूमि के अनुपात में जनसंख्या बढ़ने के परिणामस्वरूप आवासीय सुविधाओं में कमी आई है। आवास की कमी ने ही नगरों–महानगरों के हाशियों पर झोंपड़पट्टियों की अनगिनत अवांछित कतारों को जन्म दिया है।

वस्तुतः झोंपड़पट्टियों की उत्पत्ति व विस्तार का सर्वाधिक प्रमुख कारक–'पलायन' प्रवृत्ति ही है। विवश व अभावग्रस्त ग्रामीण कृषक तथा मजदूर वर्ग सुखद भविष्य के स्वप्न संजोए जब शहरी धरातल पर पर्दापण करता है तब उनके सम्मुख 'दो जून की रोटी' तथा 'आश्रय हेतु छत'– दो प्रमुख समस्याएँ मुँह बार खड़ी होती है। वे इन्हीं समस्याओं के निदान हेतु कारखानों या मिलों में मजदूरी, रिक्षा खींचना, दिहाड़ी मज़दूरी जैसे श्रमजन्य कार्यों को अपनाते हैं और आश्रय हेतु अपने कार्यस्थल के निकट झोपड़पट्टियों में शरण लेते हैं या स्वयं ही अवैध झोंपड़पट्टियों का निर्माण कर लेते हैं। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि 'पलायन' प्रक्रिया ही शहरी परिप्रेक्ष्य में झोपड़पट्टियों के अस्तित्व को जन्म देने व पुष्ट करने में मुख्य रूप से उत्तरदायी भूमिका निभाती है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी–उपन्यासों में झोंपड़पट्टियों के जन्म व विस्तार हेतु अनेक उत्तरदायी कारक यथा–आवासीय सुविधाओं की कमी, कम वेतन, कार्य स्थल की समीपता, भूमि का अतिक्रमण आदि लक्षित होते हैं परन्तु इन सभी कारकों के मूल में 'पलायन' प्रवृत्ति ही दृष्टिगोचर होती है। वास्तव में 'पलायन' ही अन्य कारकों का जन्मदाता है। विगत अनेक वर्षों से हजारों नौजवानों की फौज आँखों में उज्ज्वल भविश्य के स्वप्न संजोए, समृद्धि की कामना लिए प्रतिदिन महानगरों में प्रवेश करती

* *(शोधार्थी), हिन्दी–विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़*

है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी–उपन्यासों में झोंपड़पट्टियों में गुजर बसर कर रही ऐसी अनेक पलायित ज़िंदगियाँ उद्घाटित हुई हैं।

पलायन के दबावकारी कारकों के अन्तर्गत आर्थिक अभावों की पीड़ा भोगते मनुश्य अपनी जन्मभूमि छोड़ पलायन हेतु विवश हो जाते हैं। उपन्यास 'दूसरा घर' में कमलेश, रहमान जैसे नवयुवक आर्थिक अभावों से जूझते हुए नौकरी की तलाश में शहर आते हैं। लेखक रामदरश मिश्र 'रहमान' के माध्यम से पलायन की पीड़ा उकेरते हुए कहते हैं–

"यू.पी. से इंटर पास किया है। अब्बा यहाँ मिल में चपरासी हैं, वे चाहते हैं मैं पढ़ूँ, लेकिन घर की गरीबी देखकर पढ़ने की हिम्मत नहीं होती। सोचता हूँ कोई छोटी–मोटी नौकरी कर लूँ ताकि अब्बा का बोझ हल्का हो। वे अकेले कमाने वाले हैं। गाँव पर बड़ा परिवार है। छोटी–मोटी खेती है। माँ कपड़े सिलकर कुछ काम चलाती है लेकिन बीमार रहती है। एक बड़े भाई हैं, अनपढ़। वे खेत देखते हैं और दूसरों के यहाँ मजूरी भी कर लेते हैं। मुझसे छोटी तीन बहनें हैं, दो भाई हैं। अब्बा पेट काट–काट कर रूपये भेजते हैं। भला मैं पढ़ता रहूँ और वे पिसते रहें, यह कैसे हो सकता है?"[1]

मधु काँकरिया द्वारा रचित 'पत्ताखोर' उपन्यास में वर्णित मोहन बागान लेन बस्ती में रहने वाला 'इतवारिया' भी गाँवों में व्याप्त आर्थिक अभावों के कारण ही षहर में मजदूरी करने हेतु विवश होता है।

ग्रामीण क्षेत्र के लोगों को आर्थिक अभावों के अतिरिक्त बाढ़, अकाल जैसी प्राकृतिक आपदाएँ व भयंकर महामारियाँ भी पलायन के लिए विवश कर देती हैं। मधु काँकरिया द्वारा रचित उपन्यास 'पत्ताखोर' में रिक्शाचालक सहदेव अतीत की स्मषतियों में डूब आदित्य के समक्ष अपने पलायन की पीड़ा अभिव्यक्त करता हुआ कहता है–

"वह 1962 का बिहार में पड़ने वाला भयानक सूखा था। फसलें खराब हो गई थीं। आज भी याद है तब अमरीका से ढेर सारा बाजरा यहाँ आ रहा था। अरे, वहाँ सूअर खाते थे, उनके मुँह से बच गया तो यहाँ भेज दिया। मेरे बाबा तब जीवित थे, उन्होंने ही कहीं से सुना था। आज भी याद है, हमने तब तीन महीने तक सिर्फ एक ही धान का मुँह देखा रहा–बाजरा। अरे भैया, ई तो 'सहरी' लोगन का ठाठ है, कभी गेहूँ, कभी चावल, कभी अरहर तो कभी बेसन। ....खैर जब उन दिनों बाजरा भी मिलना बंद हो गया तब भूखे मरने की नौबत आई। तब जाना कितनी कुत्ती चीज है यह भूख। क्या देस, क्या परदेस..सब बराबर कर देती है यह भूख। मैं तब बाबा

के कंधे तक आने लगा था। एक शाम गाँव के आदमी के साथ कमाने के लिए ई सिहर में आ गया।"[2]

कौशल्या बैसंत्री द्वारा रचित आत्मकथात्मक उपन्यास 'दोहरा अभिशाप' में लेखिका के बाबा भी गाँव में अकाल पड़ने के कारण जीविका की तलाश में नागपुर षहर आ जाते हैं–

"पारडी गाँव और आस–पास के गाँवों में वर्षा न होने से अकाल पड़ गया था। गाँव से लोग शहर में आने लगे। साखरा बाई भी बाबा को लेकर नागपुर आ गई।"[3]

भीष्म साहनी द्वारा रचित उपन्यास 'बसन्ती' में राजमज़दूरों की बस्ती में रहने वाले बाशिंदे भी अफसरों के सम्मुख जीवन की विडम्बना में छिपे पलायन के कारण स्पष्ट करते हुए कहते हैं–

"हमसे कड़वा बोलकर तुम्हें क्या मिलेगा। तुम्हारे भाग अच्छे थे, तुम अफसर बन गए। हमारे भाग खोटे थे, हम मिस्त्री मजूर बने, पर भाई, बोलों तो मीठा। हमारा पानी तो नहीं उतारो, हम तुम्हारे द्वार पर आए हैं, हमारी पगड़ी तो नहीं उछालो। हमारे बाप–दादा भी जमीन जायदाद वाले थे, अभी भी राजस्थान में हमारी अपनी खेती है। अब वहाँ सूखा पड़े तो हम क्या करें, बाल–बच्चों का पेट पालने के लिए दिल्ली चले आए।"[4]

कृषि–संस्कृति का विनाश भी पलायन के लिए उत्तरदायी है। इसके अतिरिक्त अत्याधुनिक मशीनों के आगमन के कारण ग्रामीण लघु उद्योगों का ह्रास भी हो रहा है। ऐसी स्थिति में भी लोग गाँव से शहरों की ओर पलायन करने हेतु विवश हैं।

'पत्ताखोर' उपन्यास में बस्ती में रहने वाले 'पंचम' के पलायित जीवन के माध्यम से उपर्युक्त विचार को अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है:–

"कृषि संस्कृति के विनाश, परम्परागत कुटीर धंधों के ह्रास और जंगलों के हाथ से निकल जाने के दुर्भाग्य ने पंचम को भी नागरीय संकट की इस अमानवीय नगरी में जिन्दगी की सम्भावनाएँ और स्वप्न ढूँढने ला पटका था। वह भी सहदेव के गाँव का ही था, फर्क इतना था कि पंचम आदिवासी था। पंचम असुर। उसकी कई पीढ़ियों ने हेमोलाइट पत्थर से लोहा बनाने का खानदानी काम किया था, इसके अलावा वे बाँस एवं डलिया बनाने जैसे दूसरे छोटे–मोटे काम वगैरह भी करते थे। यद्यपि जिस विधि से वे लोहा बनाते थे उसकी जंग प्रतिरोधक शक्ति टिस्कों के बने लोहे से भी अधिक थी, फिर भी बाजार में सस्ता लोहा मिलने के चलते उसका बना

लोहा बिकना बंद हो गया था और वह शिल्पी से आधा मजदूर और फिर खाँटी मजदूर बनता हुआ इस परदेस में रिक्शावाला बन गया था।"[5]

गाँवों में जमींदारों और महाजनों के शोषण का आतंक भी लोगों को पलायन हेतु विवश करता है। उपन्यास 'दूसरा घर' में शंकर की चाली में रहने वाला 'फेंकू' भी जमींदार के शोषण से त्रस्त होकर रोजी–रोटी कमाने अहमदाबाद आता है। इसी प्रकार धर्मपाल द्वारा रचित 'बस्ती' उपन्यास में भी रज्जो व रामसरन के पलायन हेतु जमींदार का आतंक ही उत्तरदायी है। रज्जो अवधेश को गाँव में जमींदार द्वारा किए गए शोषण की आपबीती सुनाती है:–

"ऊ रात कैसे कारी थी–भईन, नाम न लाना जुबान पर हमार तीन बचवा चलत, चलत, हाथ–पाँव मा सूजन। जमींदार ने भगाई हीन। का बोला? बोला–हरामजादो कभी मुख न दिखना चाहिए। नाँही तो गला सफा चट्ट। तुम्हार बड़ा भईन आगे–आगे हम ऊ के पीछे। एक बचवा पैदिल–दूसरा हमार गोद मा–तीसरा बापू के सर पर। का कसूर था हमार? कोई न आवा हमें बचाइन खातिर। न मरद न औरत। गाँव मा गुप्प सन्नाटा। गाँव का मुखिया बोला–'रामसरन–रज्जो छोड़ दो गाँव। तुम बन्धुए हो। जीमीदार खूँखार है। अपनी बस्ती कहीं और बसा लो। कृकृअवधेस भईन बचवा कीच मा गढ़–गढ़ जाये रहे। रोवत–चिल्लावत तुम्हार भईन की आँख मा आँसू कृकृझर झर– हे–ईसवर गजब होई गया। तुम्हार भईन बोला चल–रज्जो बड़े सहर माँ रोजगार है। बहुत जोगाड़ है।"[6]

गाँव में जाति, धर्म, प्रेम संबंध आदि के कारण भी सामाजिक तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। ऐसी स्थिति में भी संबंधित व्यक्ति या परिवार शहरों की ओर पलायन करते हैं। मिथिलेश्वर द्वारा रचित उपन्यास 'माटी कहे कुम्हार से' में बिसुनदेव और कलावती के प्रेम संबंध उजागर होने पर गाँव में तनाव का माहौल उत्पन्न हो जाता है। वे दोनों सामाजिक व पारिवारिक तनाव से उत्पन्न जीवन संकट से बचने हेतु वहाँ से भागकर 'नरही' झोंपड़पट्टी में षरण प्राप्त करते हैं।

ग्रामीण जनता विवशता से इतर शहरी जीवन की चकाचौंध से प्रभावित होकर भी शहरों की ओर पलायन करती हैं। 'बसन्ती' उपन्यास में लेखक ने दिल्ली शहर के विस्तार के परिणामस्वरूप बढ़ती पलायन दर के विषय में विचार व्यक्त किए है:–

"बस्ती क्या थी, दिल्ली की ही एक सड़क के किनारे छोटा–सा राजस्थान बना हुआ था। आजादी के बाद, दिल्ली शहर फैलने लगा था। नई–नई बस्तियों की उसारी होने लगी थी और उन बस्तियों को बनाने के लिए जगह–जगह से राज–मजदूर खिंचे आने लगे थे। दिल्ली से दूर, जहाँ कहीं सूखा पड़ता या बाढ़

आती, वहीं से लोग उठ–उठकर दिल्ली की ओर भागने लगते। कहीं परिवार के परिवार चले आए, कहीं अकेले मर्द, कहीं छोटी उम्र के लौंडे लड़के भी। कहीं राजस्थान से तो कहीं हरयाणा और पंजाब के गाँवों से और कहीं तो दूर दक्षिण से भी; पर राजमजदूरी के काम के लिए सबसे ज्यादा लोग राजस्थान से ही आए। रोजगार की तलाष में राजमजदूर ही नहीं, धोबी, नाई, चाय–पान वाले और भी तरह–तरह के धंधे करने वाले दिल्ली पहुँचने लगे।"[7]

नगरों–महानगरों में शहरीकरण की प्रक्रिया के समानान्तर औद्योगीकरण की प्रक्रिया का भी विकास हुआ है। शहरों में उद्योगों के विस्तार से रोजगार की संभावनाओं में वृद्धि हुई है। शहरों में उपलब्ध रोजगार का आकर्शण भी लोगों को पलायन हेतु प्रेरित करता है। छोटे गाँव व कस्बों में रहने वाले लोगों को बड़े शहरों में उपलब्ध सुविधाओं का आकर्षण भी यहाँ खींच लाता है। षैलेष मटियानी द्वारा रचित उपन्यास 'बोरीवली से बोरीबन्दर तक' में कली हुसैन तथा चंदा फिल्मी दुनिया में षोहरत कमाने का स्वप्न लिए बम्बई पहुँचते हैः–

"लखनऊ की इस चंदा को, सोलहवीं कला पूर्ण होते–होते लीला चिटनीस–खुर्शीद बनने का सब्ज बाग दिखाकर कली हुसैन बम्बई ले आया था। यों लखनऊ में चंदा की खूब कद्र थी। उसकी 'बाली उमर लरकइयाँ, ना छेड़ों सैयाँ' पर लखनऊ के रइसों के घर बनते–बिगड़ते थे। पर, कल्पना और महत्त्वाकांक्षा के पर सुर्खाव के होते हैं। तो चंदा कलिया तबलची के साथ बम्बई आई।"[8]

'अवेणि' उपन्यास में भी बिलासपुर शहर के उपेक्षित बस्ती क्षेत्र के लोग जीवन की नई संभावनाओं को ढूँढने नए शहरों की ओर पलायन करते हैं।

पत्रकार सुरेश राव पलायन की पीड़ा के यथार्थ को अभिव्यक्त करता हुआ कहता है–

"यह शहर जो मेरी मधुर स्मृतियों के साथ कहीं दूर तक चलेगा, चलता रहेगा। शहर बसेंगे–उजड़ेंगे–बसेंगे। मुझे जैसे हजारों सुरेश राव भोंसले भी इस षहर से कहीं ओर रोजगार की तलाष में, आँखों में सपने लिये पलायन कर जाएँगे–साधराम की तरह, कौसिल्या की तरह, हमेशा–हमेशा के लिए कभी न आने के लिए।"[9]

अस्तु, झोंपड़पट्टी जीवन को अभिव्यक्त करने वाले स्वातंत्र्योत्तर–हिन्दी उपन्यासों में 'पलायन' झोंपड़पट्टियों की उत्पत्ति के एक महत्त्वपूर्ण कारक के रूप में उभरा है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी–उपन्यासों में पलायन के दबावकारी व प्रभावकारी कारकों की यथार्थ अभिव्यक्ति अनेक पात्रों की पलायन कथा के माध्यम से हुई है। प्रायः दबावकारी कारक लोगों को शहरों की ओर रूख करने हेतु विवश कर देते हैं।

वस्तुतः ये कारक व्यक्ति–विशेष की वैयक्तिक परिस्थितियों यथा–शोषण, विपन्नता आदि से संबंधित होते हैं। उपन्यास 'पत्ताखोर' में इतवारिया, उपन्यास 'दूसरा घर' में शंकर, रहमान, कमलेश आदि पात्र आर्थिक अभावों से विवष होकर पलायन करते हैं वहीं दूसरी ओर 'पत्ताखोर' उपन्यास में सहदेव, :दोहरा अभिशाप' उपन्यास में साखराबाई, 'बसन्ती' उपन्यास में अनेक राजमज़दूर, 'अवेणि' उपन्यास में कौषल्या का परिवार प्राकृतिक आपदाओं के कारण अपने मूल स्थानों से उखड़ने हेतु विवश है।

'पत्ताखोर' उपन्यास का पंचम कृषि संस्कृति व कुटीर उद्योगों के पतन का शिकार बन पलायित होता है जबकि 'दूसरा घर' उपन्यास में असरफी, फेंकू तथा 'बस्ती' उपन्यास में रज्जो और रामसरन जैसे पात्र जमींदारों के षोशण से निजात पाने हेतु शहरों की ओर रूख करते हैं। स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में पलायन के प्रभावकारी कारकों का उद्घाटन भी शहरीकरण, औद्योगीकरण, सुविधाओं का आकर्शण जैसे पक्षों के अन्तर्गत किया गया है। बसन्ती पत्ताखोर तथा अवेणि उपन्यासों में शहरीकरण तथा औद्योगीकरण को पलायन के उत्तरदायी कारकों के रूप में दर्शाया गया है। वहीं दूसरी ओर कली हुसैन व चंदा (बोरीवली से बोरीबंदर तक) जैसे पात्र शोहरत पाने हेतु तथा शंकर (दूसरा घर) शिक्षा प्राप्त करने के लिए पलायित होते हैं। समग्र रूप में कहा जा सकता है कि ये सभी विपन्न, अशिक्षित पलायित ज़िंदगियाँ ही सम्मिश्रित रूप में झोंपड़पट्टियों की उत्पत्ति का मूल हैं।

संदर्भ सूची

1. मिश्र, रामदरश, 'दूसरा घर', दिल्ली: वाणी प्रकाशन, संस्करण: 2007, पृ सं. 129

2. काँकरिया, मधु, 'पत्ताखोर', दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, संस्करण: 2012, पृ. सं. 180–181

3. बैसंत्री, कौशल्या, 'दोहरा अभिशाप', दिल्ली: परमेश्वरी प्रकाशन, संस्करण: 2012, पृ. सं. 25

4. साहनी, भीष्म, 'बसन्ती', दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, संस्करण: 1980, पृ. सं. 09

5. 'पत्ताखोर', पृ. सं. 186

6. धर्मपाल, 'बस्ती', दिल्ली : सुयोग्य प्रकाशन, संस्करण: 1994, पृ. सं. 27

7. 'बसन्ती', पृ. सं. 11–12

8. मटियानी, शैलेश, 'बोरीवली से बोरीबन्दर तक', दिल्ली: रामलाल पुरी प्रकाशन, संस्करण: 1959, पृ. सं. 48–49

9. मोहनीश, स्नेह, 'अवेणि', दिल्ली: ग्रंथ अकादमी प्रकाशन, संस्करण: 2009, पृ. सं. 176